॥ ॐ ॥
॥ श्री परमात्मने नमः ॥
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद

विषय सूची

॥ अथ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥ 3

प्रथम अध्याय 4

द्वितीय अध्याय 12

तृतीय अध्याय 19

चतुर्थ अध्याय 27

पांचवां अध्याय 36

छठा अध्याय 43

॥ श्री हरि ॥

॥ अथ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

प्रथम अध्याय

हरिः ॐ ॥ ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।

हरि ॐ, इस प्रकार परमात्मा के परम पवित्र नाम का उच्चारण करके, उन परम पिता परमेश्वर का स्मरण करते हुए इस उपनिषद का प्रारम्भ करते हैं।

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥१॥

ब्रह्म विषयक चर्चा करने वाले कुछ जिज्ञासु आपस में चर्चा करते हुए हैं। हे वेदज्ञ महर्षि ! इस जगत का मुख कारण कौन है? हम लोग किससे उत्पन्न हुए हैं ? किसके सहारे जी रहे हैं? हमारे जीवन का क्या आधार हैं? हमारी स्थिति सम्यक प्रकार से किसके सहारे से बनी हुई है? किसके अधीन रहकर हम लोग सुख और दुखों में निश्चित व्यवस्था के अनुसारभोग रहे हैं? ॥१॥

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥२॥

काल, स्वभाव, निश्चित फल देने वाला कर्म, आकस्मिक घटना, पाँचों महाभूत तथा जीवात्मा कारण है। इन पर विचार करना चाहिए। इन काल आदि का समुदाय भी इस जगत का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि यह सब चेतन आत्मा के अधीन हैं अर्थात जड़ होने के कारण स्वतंत्र नहीं हैं। परन्तु जीवात्मा नही इस जगत का कारण नहीं हो सकता क्योंकि जीवात्मा भी सुखों और दुखों के कारण भाग्य के अधीन है। अत: कारण कुछ और ही हैं। ॥२॥

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥३॥

उन्होंने ध्यानयोग में स्थित होकर, अपने गुणों से ढकी हुई उन परमात्मा देव की स्वल्प भूत अचिन्त्य शक्ति का साक्षात्कार किया। वह परमात्मादेव अकेला ही काल से लेकर आत्मा आदि सम्पूर्ण कारणों पर शासन करता है। अर्थात समस्त कारक जिनकी आज्ञा और प्रेरणा पाकर अथवा उनका अंश धारण करके अपना कार्य करने में सक्षम होते हैं, वह सर्व शक्तिमान परमेश्वर ही इस जगत के वास्तविक कारण हैं, कोई अन्य नहीं है। ॥३॥

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः ।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥४॥

उस एक नेमीवाले[1], बीस सहायक अरों[2] से तथा छः अष्टकों[3] से युक्त, अनेक रूपों वाले एक ही पाश से युक्त[4], मार्ग मे तीन भेदों[5] वाले तथा दो निमित्त[6] और मोह रुपी एक नाभि वाले[7], उस विश्व चक्र को उन्होंने देखा। ॥४॥

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रांपञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम् ।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥५॥

पांच स्रोतों से आने वाले विषय रुप जल से युक्त[8], पांच स्थानों से उत्पन्न होकर[9], भयानक और टेढ़ी मेढ़ी चाल से चलने वाली[10], पांच प्राण रूप तरंगों वाली, पांच प्रकार के ज्ञान आदि का मूल कारण मन

---

[1] नेमी उस गोल लोहे के घेरे को कहते हैं जो चक्र तथा उसके सहायक भागों को एक स्थान पर जोड़े रखता है। यहाँ अव्यक्त प्रकृति को ही नेमी कहा गया है।
[2] दस इन्द्रियां, पांच विषय तथा पांच प्राण।
[3] आठ प्रकार की प्रकृति- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि तथा अहंकार, मनुष्य के शरीर की आठ धातुएं – त्वचा, चमड़ी, मांस, रक्त, मेद, हड्डी, मज्जा और वीर्य।
[4] अनेक नामों से विद्यमान एक ही आसक्ति रुपी पाश से बंधे हुए
[5] देवलोक, पितृलोक तथा मृत्यु लोक में ही पुनर्जन्म।
[6] पुण्य और पाप कर्म
[7] अज्ञानता रुपी जगत का केंद्र।
[8] पांच ज्ञानेन्द्रिय - आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा रुपी स्रोत।
[9] पञ्च भूत - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश रुपी उद्गम स्थान।
[10] संसार अत्यंत कठिन है, जीवन-मृत्यु रूपी दुःख, छल- कपट से भरा है।

ही है। पांच भवरों वाली[11], पांच दुःखरूप[12] प्रवाह के वेग से युक्त, पांच पर्वों[13] वाली और पचास भेदों वाली[14] नदी को हम लोग जानते हैं। ॥५॥

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥६॥

सबके जीविका रूप, सबके आश्रयभूत विस्तृत ब्रह्मचक्र मे जीवात्मा को घुमाया जाता है। अपने आप को सबके प्रेरक परमात्मा को अलग अलग जानकर और उसके पश्च्यात उस परमात्मा से स्वीकृत होकर अमृत भाव को प्राप्त हो जाता है। ॥६॥

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च ।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥ ७॥

यह वेद वर्णित परब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ आश्रय और अविनाशी है। उसमे तीनों लोक स्थित हैं। वेद के तत्व को जानने वाले महापुरुष, ह्रदय में अंतर्यामी रूप से थित उस ब्रह्म को जानकार, उसी के परायण हो, उस परब्रह्म मे लीन होकर, सदा के लिए जन्म- मृत्यु से मुक्त हो गए। ॥७॥

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।

---

[11] इन्द्रिय विषय रुपी भंवर- गंध, रस, रूप स्पर्श तथा शब्द।
[12] गर्भावस्था, जन्म, बुढ़ापा, रोग एवं मृत्यु।
[13] अज्ञान, अहंकार, राग, द्वेष और मृत्युभय रुपी पांच पर्व।
[14] अंत:करण की पचास वृत्तियाँ

अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ८॥

विनाशशील जड़ वर्ग तथा अविनाशी जीवात्मा इन दोनों के संयुक्त रूप, व्यक्त और अव्यक्त रूप, इस विश्व का परमेश्वर ही धारण और पोषण करता है। तथा जीवात्मा इस जगत के विषयों का भोक्ता बने रहने के कारण, प्रकृति के अधीन हो इसमें बंध जाता है और उस परमदेव परमेश्वर को जानकार सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ॥८॥

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९॥

सर्वज्ञ और अज्ञानी, सर्वसमर्थ और असमर्थ, यह दो अजन्मा आत्मा है तथा भोगनेवाले जीवात्मा के लिए उपयुक्त भोगी सामग्री से युक्त अनादी प्रकृति एक अन्य तीसरी शक्ति है। यह परमात्मा अनंत, सम्पूर्ण रूपों वाला और कर्तापन के अभिमान से रहित है। जो मनुष्य इस प्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति, इन तीनो को ब्रह्मरूप से जान लेता है, वह सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ॥९॥

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥ १०॥

प्रक्रति तो विनाशशील है, इसको भोगने वाला आत्मा अमृत स्वरुप अविनाशी है, इन विनाशशील जड़ तत्व और चेतन आत्मा दोनों को एक ईश्वर अपने शासन मे रखता है। इस प्रकार परमात्मा को जान

कर, उसका निरंतर ध्यान करने से, मन को उसमे लगाये रखने से तथा उसी में तल्लीन जो जाने से, अंत में उस परमेश्वर परमात्मा को प्राप्त कर समस्त माया की निर्वृति हो जाती है अर्थात मोक्ष प्राप्त हो जाता है। ॥११॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥ ११॥

उस परमदेव का निरंतर ध्यान करने से, उस प्रकाशमय परमात्मा को जान लेने पर, समस्त बन्धनों का नाश हो जाता है। क्योंकि दुःख-क्लेशों का नाश जो जाने के कारण, जन्म-मृत्यु का सर्वथा अभाव हो जाता है। अत: शरीर का नाश होने पर, तीसरे लोक (स्वर्ग) तक के समस्त ऐश्वर्य का त्याग करके सर्वथा विशुद्ध पूर्ण काम हो जाता है। ॥१२॥

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् ।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ १२॥

अपने ही भीतर स्थित इस ब्रह्म को सर्वदा जानना चाहिए क्योंकि इससे बढ़कर जानने योग्य तत्व दूसरा कुछ भी नहीं है। भोक्ता-जीवात्मा, भोग्य -जड़ वर्ग और इन तीनो के प्रेरक ईश्वर को जान कर, मनुष्य सब कुछ जान लेता है। इस प्रकार इन तीन भेदों में बताया हुआ ब्रह्म ही है। अर्थात जड़- प्रकृति, चेतन- आत्मा और इन दोनों के आधार परमात्मा – यह तीनो ब्रह्म के ही रूप हैं। ॥१२॥

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः ।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्य स्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥ १३॥

जिस प्रकार योनि अर्थात आश्रयभूत काष्ठ मे विद्यमान अग्नि का रूप दिखाई नहीं देता और उसके चिन्ह -उसकी सत्ता का नाश भी नहीं होता क्योंकि वह चेष्टा करने पर अवश्य ही अपनी योनि मे ग्रहण किया जा सकता है, उसी प्रकार वह दोनों जीवात्मा तथा परमात्मा शरीर में ही ओंकार के द्वारा साधना करने पर ग्रहण किये जा सकते हैं। अर्थ यह है की जिस प्रकार अग्नि छुपा हुआ होने पर भी अरणि का मंथन करने पर भी उदित हो जाता है। उसी प्रकार परमात्मा के प्रत्यक्ष न होने पर भी ओंकार के जप द्वारा साधना करने पर उनका साक्षात्कार अपने ह्रदय में किया जा सकता है। ॥१३॥

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥ १४॥

अपने शरीर को नीचे की अरणि और ओंकार (प्रणव) को ऊपर की अरणि बनाकर ध्यान के द्वारा निरंतर मंथन करते रहने से, साधक छिपी हुई अग्नि की भांति परम देव परमेश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। ॥१४॥

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्माऽत्मनि गृह्यतेऽसौसत्येनैनं तपसायोऽनुपश्यति ॥ १५॥

तिलों मे तेल, दही मे घी, सोतों मे जल और अरणियों मे जल जिस प्रकार छिपे रहते हैं। उसी प्रकार वह परमात्मा ह्रदय मे छुपा हुआ है। जो कोई साधक इसको सत्य के द्वारा और सत्य रूप तप से उसका चिंतन करता है। उसके द्वारा वह परमात्मा ग्रहण किया जा सकता है। ॥१५॥

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् ।
आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत् परम् ॥ १६॥

दूध मे विद्यमान घी की भांति सर्वत्र विद्यमान, आत्मविद्या तथा तप से प्राप्त होने वाले परमात्मा को जो साधक जान लेता है। वही उपनिषदों मे बताया हुआ परम तत्व ब्रह्म है। यही उपनिषदों मे बताया हुआ परम तत्व ब्रह्म है। ॥१६॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

द्वितीय अध्याय

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १॥

सबको उत्पन्न करने वाला परमात्मा; पहले हमारे मन को और उसके पश्च्यात समस्त बुद्धियों को, तत्व की प्राप्ति के लिए अपने स्वरुप में लगाते हुए, अग्नि इत्यादि इन्द्रियाभिमानी की ज्योति का अवलोकन करते हुए, पार्थिव पदार्थों से ऊपर उठा कर, हमारी इन्द्रियों में स्थापित करे। ॥१॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।
सुवर्गेयाय शक्त्या ॥ २॥

हम लोग सबको उत्पन्न करने वाले परम देव परमेश्वर की आराधना रूप यज्ञ मे लगे हुए मन के द्वारा, स्वर्गीय सुख (भगवत प्राप्ति द्वारा प्राप्त हुए आनंद) की प्राप्ति के लिए पूरी शक्ति से प्रयत्न करें। ॥२॥

युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३॥

सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर, स्वर्गादि लोकों में और आकाश में गमन करने वाले तथा अत्यंत तेज प्रकाश फ़ैलाने वाले उक मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को हमारे मन और बुद्धि से संयुक्त करके, प्रकाश प्रदान करने के लिए प्रेरणा प्रदान करे, ताकि हम उन परमेश्वर का साक्षात्कार करने में समर्थ हों। ॥३॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महि देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४॥

जिसमे ब्राह्मण आदि अपने मन को स्थिर करते हैं और बुद्धि की वृतियों को भी स्थिर करते हैं । जिसने समस्त अग्निहोत्र आदि समस्त शुभ कर्मों का विधान किया है तथा जो समस्त जगत के विचारों को जानने वाला एक ही है। उस सबसे महान, सर्वयापी, सर्वज्ञ और सबके उत्पन्न कर्ता परमदेव परमेश्वर की निश्चय ही हमें महती स्तुति करनी चाहिए। ॥४॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५॥

हे मन और बुद्धि, मैं तुम दोनों के स्वामी, सबके आदिकर्ता, परब्रहम परमात्मा से बार बार नमस्कार के द्वारा उनकी शरण लेता हूँ। मेरा यह स्तुतिपाठ, श्रेष्ठ विद्वान की कीर्ति की भांति सर्वत्र फ़ैल जाए,

जिससे अविनाशी परमात्मा के समस्त पुत्र जो दिव्य लोकों मे निवास करते हैं, उसे सुन सकें। ॥५॥

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः ॥ ६॥

जिस स्थिति मे परमात्मा रूप अग्नि को प्राप्त करने के उद्देश्य से ओंकार के जप और ध्यान द्वारा मंथन किया जाता है। जहाँ प्राण वायु का विधिपूर्वक निरोध किया जाता है। जहाँ आनंद रूप सोमरस अधिकता मे प्रकट होता है। वहाँ उस स्थिति मे मन सर्वथा शुद्ध हो जाता है। ॥६॥

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
यत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्तमक्षिपत् ॥ ७॥

सम्पूर्ण जगत को उत्पन करने वाले परमात्मा के द्वारा प्राप्त हुई प्रेरणा से, सब के आदिकारण, उस परब्रह्म परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए। तुम उस परमात्मा मे ही आश्रय प्राप्त करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से तुम्हारे पूर्व संचित कर्म विघ्न कारक (बंधन रूप) नहीं होंगे। ॥७॥

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयानकानि ॥ ८॥

ध्यानयोग का साधन करने वाले बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए की ध्यान के समय, सिर गला और छाती को ऊंचा उठा कर, शरीर को सीधा और स्थिर करके तथा समस्त इन्द्रियों को मन के द्वारा ह्रदय मे निरुद्ध करके, ॐकार रुपी नौका द्वारा समस्त भयानक प्रवाहों को पार कर ले। अर्थात ओंकार का जप तथा उसके वाच्य परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करके जन्म-मृत्युमें ले जाने वाली वासनाओं का त्याग करके अमरपद को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। ॥८॥

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥९॥

विद्वान् बुद्धिमान् साधक को चाहिये कि उपर्युक्त योगसाधना में आहार विहार आदि समस्त चेष्टाओं को यथायोग्य करते हुए विधिवत् प्राणायाम करके, प्राण के सूक्ष्म हो जाने पर नासिका द्वारा उनको बाहर निकाल दे। इसके बाद दुष्ट घोड़ों से युक्त रथ को जिस प्रकार सारथि सावधानी पूर्वक गन्तव्य मार्ग में ले जाता है, उसी प्रकार इस मन को सावधान होकर वश में किये रहे। ॥९॥

समे शुचौ शर्करावह्निवालिकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥१०॥

सब प्रकार से शुद्ध, कंकड़, अग्नि और बालू से रहित तथा शब्द, जल और आश्रय आदि की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल और नेत्रों को पीड़ा न देनेवाले (भयानक न दिखने वाले) गुफा आदि वायुशून्य स्थान में मन को ध्यान में लगाने का अभ्यास करना चाहिये। ॥१०॥

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११॥

परमात्मा की प्राप्तिके लिये किये जानेवाले योग में पहले कुहरा, धूआँ, सूर्य, वायु और अग्निके सदृशः तथा बिजली, स्फटिक मणि और चन्द्रमा के सदृशः बहुत से दृश्य, योगीके सामने प्रकट होते है। यह सब योग की सफलता को स्पष्टरूप से सूचित करने वाले है। ॥११॥

पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥१२॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-इन पाँचों महाभूतोंका सम्यक् प्रकारसे उत्थान होने पर तथा पञ्चात्म के योग गुण प्रवृत्त इनसे सम्बन्ध रखने वाले पाँच प्रकारके योगसम्बन्धी गुणोंकी सिद्धि हो जानेपर योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर लेने वाले उस साधक को न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और ना मृत्यु उसकी मृत्यु ही होती है अर्थात उसकी इच्छा के बिना उसका यह शरीर नष्ट नहीं हो सकता ॥१२॥

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादः स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥१३॥

शरीर का हल्कापन, किसी प्रकार के रोग का न होना, विषयासक्ति की निवृत्ति, शारीरिक वर्ण की उज्ज्वलता, स्वर की मधुरता, शरीर मे

अच्छी गन्ध और मल-मूत्र का कम हो जाना इन सबको योग की पहली सिद्धि कहते हैं। ॥१३॥

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम् ।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥१४॥

जिस प्रकार मिट्टी से लिप्त होकर मलिन हुआ प्रकाशयुक्त रत्न, भली भांति धुल जाने पर चमकने लगता है। उसी प्रकार शरीरधारी जीवात्मा मल आदि से रहित आत्म तत्त्व को योगके द्वारा भलीभांति प्रत्यक्ष करके, अकेला कैवल्य अवस्था को प्राप्त कर, सब प्रकार के दुःखोंसे रहित कृतकृत्य हो जाता है। अर्थात उसका मनुष्य जीवन सार्थक हो जाता है। ॥१४॥

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपापैः ॥१५॥

उसके बाद जब वह योगी यहाँ दीपक के सदृश प्रकाशमय आत्म तत्त्व के द्वारा ब्रह्मतत्त्व को भलीभाँति प्रत्यक्ष देख लेता है। उस समय वह उस अजन्मा, निश्चल, समस्त तत्वों से विशुद्ध परमदेव परमात्मा को जानकर सब बन्धनों से सदा के लिये छूट जाता है अर्थात सर्वथा विशुद्ध परम देव परमात्माको तत्वसे जानकर सब प्रकारके बन्धनोंसे सदाके लिये छूट जाता है। ॥१५॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः।
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥१६॥

निश्चय ही यह ऊपर बताया हुआ, परमदेव परमात्मा अनु दिशाओं और अवान्तर दिशाओं में व्याप्त है। वही प्रसिद्ध परमात्मा सबसे पहले हिरण्यगर्भ रूप में प्रकट हुआ था और वही समस्त ब्रह्माण्ड रूप गर्भ में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। वही इस समय जगत के रूप में प्रकट है और वही भविष्य में भी प्रकट होने वाला है। वह सब जीवों के भीतर, अन्तर्यामी रूप से स्थित है। और सब ओर मुखवाला है अर्थात सब की सभी और से देखने वाला है। ॥१६॥

यो देवो अग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥१७॥

जो परमदेव परमात्मा अग्नि में है। जो जल मे है। जो समस्त लोकोमे प्रविष्ट हो रहा है, जो औषधियों में हैं तथा जो वनस्पतियों में है। उन परमदेव परमात्मा को नमस्कार है, नमस्कार है॥१७॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

तृतीय अध्याय

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१॥

जो एक जगत रूप जाल का अधिपति, अपनी स्वरुप भूत शासन शक्तियों द्वारा शासन करता है। उन विविध शासन शक्तियों द्वारा सम्पूर्ण, लोकों पर शासन करता है तथा जो अकेला ही सृष्टि और उसके विस्तार में सर्वथा समर्थ है। इस ब्रह्म को जो महापुरुष जान लेते हैं, वह अमर हो जाते हैं अर्थात जन्म-मृत्युके जालसे सदा के लिये छूट जाते हैं। ॥१॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥२॥

जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन शक्तियों द्वारा, इन सब लोकों पर शासन करता है। वह रुद्र एक ही है, इसीलिये विद्वान् पुरुषों ने जगत के कारण का निश्चय करते समय दूसरे का आश्रय नहीं लिया। वह परमात्मा समस्त जीवों के भीतर स्थित हो रहा है। सम्पूर्ण लोकों की रचना करके, उनकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर प्रलयकाल इन सबको समेट लेता है अर्थात् अपनेमें विलीन कर लेते है। उस समय इनकी भिन्न-भिन्न रूपोंमें अभिव्यक्ति नहीं रहती। ॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥३॥

सर्वत्र ऑखवाला तथा सर्वत्र मुखवाला, सब जगह हाथों वाला, सब जगह पैरों वाला, आकाश और पृथ्वीकी सृष्टि करनेवाला वह एकमात्र परमदेव परमात्मा मनुष्य आदि जीवों को दो दो बांहों से युक्त करता है तथा पक्षियों को पंखों से युक्त करता है। अर्थात वे परमदेव परमेश्वर एक हैऔर सम्पूर्ण लोकों में स्थित समस्त जीवोंके कर्म और विचारोंको तथा समस्त घटनाओंको अपनी दिव्य शक्तिद्वारा निरन्तर देखते रहते हैं। आकाश से लेकर पृथ्वी तक समस्त लोकों की रचना करनेवाले एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियों को आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न शक्तियों एव साधनोंसे सम्पन्न करते है। ॥३॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥४॥

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति का हेतु और वृद्धि का हेतु है, तथा जो सबका अधिपति और महान् ज्ञानी (सर्वज्ञ) है। जिसने पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था। वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे ॥४॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥५॥

हे रुद्रदेव आपकी जो भयानकता से शून्य तथा पुण्या कर्म से प्रकाशित होने वाली क्ल्याणमयी सौम्य मूर्ति है। हे गिरिशन्त अर्थात् पर्वत पर निवास करते हुए समस्त लोकों को सुख पहुँचाने वाले शिव, उस परम शांत मूर्ती से ही कृपा करके हमारी तरफ देखिये। आपकी कृपा दृष्टि पड़ते ही हम सर्वथा पवित्र होकर आपकी प्राप्ति के योग्य ही जायेंगे। ॥५॥

याभिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥६॥

हे गिरिशन्त! हे कैलासवासी सुखदायक परमेश्वर ! जिस बाण को फेकने के लिये आपने हाथ मे धारण कर रखा है। हे गिरिराज हिमालय की रक्षा करनेवाले देव! उस बाण को कल्याणमयी बना लें। जीव समुदाय रुपी जगत को नष्ट न करें, कष्ट न दें। ॥६॥

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥७॥

पूर्वोक्त जीव-समुदाय जगत से परे और हिरण्यगर्भ रूप ब्रह्म से भी श्रेष्ठ, समस्त प्राणियों में उनके शरीरों के अनुरूप होकर छिपे हुए और सम्पूर्ण विश्व को सब ओर से घेरे हुए, उस महान् सर्वत्र व्यापक एकमात्र परमेश्वर को जानकर, ज्ञानीजन अमर हो जाते हैं। ॥७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥८॥

अविद्यारूप अन्धकार से अतीत तथा सूर्य की भाँति स्वयं प्रकाश स्वरूप, इस महान् पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूँ। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उलङ्घन करने में समर्थ हो पाता है। परम पद की प्राप्ति के लिये इसके सिवा दूसरा कोई अन्य मार्ग अर्थात् उपाय नहीं है ॥८॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥९॥

जिससे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। जिससे बढकर कोई भी न तो अधिक सूक्ष्म और न महान् ही है। जो अकेला ही वृक्ष की भाँति निश्चलभाव से प्रकाशमय आकाश में स्थित है। उस परम पुरुष पुरुषोत्तम से सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है ॥९॥

ततो यदुत्तरततं तदरूपमनामयम् ।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥१०॥

उस पहले बताये हुए हिरण्यगर्भ से जो अत्यन्त उत्कृष्ट है। वह परब्रह्म परमात्मा आकाररहित और सब प्रकारके दोषोंसे शून्य है। जो इस परब्रह्म परमात्मा को जानते है, वह अमर हो जाते हैं। परन्तु इस रहस्य को न जानने वाले दूसरे लोग बार-बार दुःखों को ही प्राप्त होते हैं। अतः मनुष्यको सदाके लिये दुःखोंसे छूटने और परमानन्दस्वरूप परमात्माको पाने के लिये उन्हें जानना चाहिये ॥१०॥

सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥ ११॥

वह भगवान सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला है, समस्त प्राणियों के हृदय रूप गुफा में निवास करता है (और) सर्वव्यापी है, इसलिये वह कल्याणस्वरूप परमेश्वर सब जगह पहुँचा हुआ है ॥११॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः ।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥१२॥

निश्चय ही यह महान प्रभु, सब पर शासन करनेवाला, अविनाशी एवं प्रकाशस्वरूप परमपुरुष पुरुषोत्तम, अपनी प्राप्तिरूप इस अत्यन्त निर्मल लाभ की ओर अन्तःकरण को प्रेरित करनेवाला है अर्थात् परमेश्वर अपने आनन्दमय विशुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति की ओर मनुष्यके अन्तःकरणको प्रेरित करते हैं, हरेक मनुष्य को ये अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ॥१२॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१३॥

यह अंगुष्ठ मात्र परिमाणवाला,अन्तर्यामी परम पुरुष पुरुषोत्तम, सदा ही मनुष्यों के, हृदय में सम्यक प्रकार से स्थित है, मन का स्वामी है तथा निर्मल हृदय और विशुद्ध मन से ध्यान में लाया हुआ प्रत्यक्ष होता है। जो इस परब्रह्म परमेश्वर को इस प्रकार जान लेते हैं, वह अमर हो जाते है अर्थात जन्म-मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जाते हैं। ॥१३॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १४॥

वह परम पुरुष हजारों सिर वाला, हजारों आँखों वाला और हजारों पैर वाला है। वह समस्त जगत को सब ओर से घेरकर अर्थात सर्वत्र व्याप्त होकर भी नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदय मे स्थित है ॥१४॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ १५॥

जो वर्त्तमान समय से पहले हो चुका है, जो भविष्य में होनेवाला है तथा जो खाद्य पदार्थों से पुष्टित होकर इस समय बढ रहा है। यह समस्त जगत् परम पुरुष परमात्मा ही है और वही अमृतमय रूप मोक्ष का स्वामी है। ॥१५॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६॥

वह परम पुरुष परमात्मा सब जगह हाथ-पैर वाला। सब जगह ऑख, सिर और मुखवाला तथा सब जगह कानों वाला है। वही ब्रह्माण्ड मे सबको सभी ओर से घेरकर स्थित है ॥१६॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥ १७॥

जो परम पुरुष परमात्मा समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों को जाननेवाला है। तथा सबका स्वामी, शासक और सबसे बड़ा आश्रय है, उसकी शरणमें जाना चाहिये। ॥१७॥

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः ।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥१८॥

सम्पूर्ण स्थावर और जंगम जगत को वश मे रखनेवाला वह प्रकाशमय परमेश्वर, नव द्वार वाले शरीर रूपी नगर में अन्तर्यामी रूप से हृदय में स्थित है। तथा वही बाह्य जगत में लीला कर रहा है। ॥१८॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥१९॥

वह परमात्मा हाथ-पैरों से रहित होकर भी, समस्त वस्तुओको ग्रहण करनेवाला तथा सर्वत्र गमन करने वाला है। ऑखों के बिना ही वह

सब कुछ देखता है और कानों के बिना ही सब कुछ सुनता है। वह जो कुछ भी जानने में आनेवाली वस्तुएँ हैं, उन सबको जानता है और उसको जानने वाला कोई अन्य नहीं है। ज्ञानी पुरुष उसे महान् आदि कहते हैं ॥१९॥

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥२०॥

वह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म तथा बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा इस जीव की हृदय रूप गुफा में छिपा हुआ है। सबकी रचना करने वाले परमेश्वर की कृपा से, जो मनुष्य उस संकप रहित परमेश्वर को और उसकी महिमा को देख लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाता है। ॥२०॥

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥२१॥

वेद के रहस्य का वर्णन करनेवाले महापुरुष, जिसके जन्म का अभाव बतलाते हैं तथा जिसको, नित्य बतलाते हैं। इस व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान, सबके आत्मा जरा मृत्यु इत्यादि विकारों से रहित पुराण पुरुष परमेश्वर को मैं जानता हूँ। ॥२१॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

चतुर्थ अध्याय

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वरणाननेकान् निहितार्थो दधाति।
विचैति चान्ते विश्वमादौ च देवःस नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १॥

जो रंग रूप आदि से रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजन वाला होने के कारण विविध शक्तियों के सम्बन्ध से सृष्टि के आदि में अनेक रूप रंग धारण कर लेता है तथा अन्त में यह सम्पूर्ण विश्व जिसमें विलीन हो जाता है वह परमदेव परमात्मा एक अद्वितीय है। वह हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे। ॥१॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ॥२॥

वही अग्नि है। वही सूर्य है। वही वायु है वही चन्द्रमा है। वह अन्यान्य प्रकाश युक्त नक्षत्र आदि है। वही जल है, वही प्रजापति है और वही ब्रहा है ॥ २॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसित्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥३॥

हे सर्वेश्वर! आप स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी आदि अनेक रूपोंवाले है। आप ही वृद्धा अवस्था में लाठी के सहारे चलते हैं। हे परमात्मन् आप ही विराट रूप में प्रकट होकर सभी ओर मुखवाले हो जाते हैं अर्थात सम्पूर्ण जगत आपका ही स्वरुप है। ॥३॥

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत् त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥४॥

हे सर्वान्तर्यामी परमात्मा! आप ही नीले रंग के पतंग -भौरे तथा हरे रंग और लाल आँखो वाले पक्षी-तोते हैं। आप ही बिजली से युक्त मेघ, वसंत आदि ऋतुएँ और सात समुद्र रूप हैं। क्योंकि आपसे ही यह सम्पूर्ण लोक और उनमें निवास करने वाले सम्पूर्ण जीव-समुदाय उत्पन्न हुए हुए हैं। आप ही अनादि (प्रकृतियों) का स्वामी और व्यापक रूप से सबमें विद्यमान है। ॥४॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥

आपने ही सदृश अर्थात् त्रिगुणमया बहुत-से भूत-समुदायों को रचने वाली तथा लाल, सफेद और काले रंग[15] की अर्थात् त्रिगुणमयी एक अजन्मा-अनादि प्रकृति को निश्चय ही एक अज्ञानी जीव आसक्त हुआ भोगता है और दूसरा ज्ञानी महापुरुष इस भोगी हुई प्रकृति को त्याग देता है। ॥५॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ६॥

सदा साथ रहनेवाले तथा परस्पर सख्यभाव रखनेवाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनों में से एक (जीवात्मा) तो उस वृक्ष के फलों (कर्मफलों) को स्वाद ले-लेक, खाता है। परन्तु दूसरा (परमात्मा) उनका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है ॥६॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥७॥

[15] सत्व, रज और तम-ये तीन गुण ही इसके तीन रंग हैं। सर्वगुण निर्मल एवं प्रकाशसक होने से उसे श्वेत माना गया है। रजोगुण रागात्मक है, अत: उसका रंग लाल माना गया है तथा तमोगुण अज्ञानरूप एवं आवरक होने के कारण उसे कृष्णवर्ण कहा गया है। इन तीन गुणों के कारण ही प्रकृति को सफेद, लाल एवं काले रंग का कहा गया है।

पूर्वोक्त शरीर रूप एक ही वृक्ष पर रहनेवाला जीवात्मा गहरी आसक्ति में डूबा हुआ है। अतः असमर्थ होने के कारण दीनतापूर्वक मोहित हुआ, शोक करता रहता है। जब (यह भगवान की अहेतु की दया से भक्तों द्वारा नित्य सेवित, अपने से भिन्न परमेश्वर को और उसकी आश्चर्यमयी महिमा को प्रत्यक्ष देख लेता है। तब वह सर्वथा शोकरहित हो जाता है। ॥७॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ८॥

जिसमे समस्त देवगण भलीभाँति स्थित है। उस अविनाशी परम व्योम (परम धाम) मे सम्पूर्ण वेद स्थित हैं। जो मनुष्य उसको नहीं जानता, वह वेदों के द्वारा क्या सिद्ध करेगा? परन्तु जो उसको जानते हैं, वह सम्यक प्रकार से उसी में स्थित हैं। ॥८॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥९॥

छन्द, यज्ञ, ऋतु (ज्योतिष्टोम आदि विशेष यज्ञ), नाना प्रकार के व्रत तथा और भी जो कुछ भविष्य एवं वर्तमान रूप वेद वर्णन करते है। इस सम्पूर्ण जगत को, प्रकृति का अधिपति परमेश्वर, इस (पहले बताये हुए महाभूतादि तत्वोंके समुदाय) से रचता है। तथा दूसरा (जीवात्मा) उस प्रपञ्च में माया के द्वारा भलीभाँति बँधा हुआ है ॥९॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम् ।
तस्यवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥

माया तो प्रकृति को समझना चाहिये और मायापति महेश्वर को समझना चाहिये। उसी के अंगभूत कारण-कार्य-समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो रहा है ॥ १०॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥११॥

जो एक अकेला ही प्रत्येक योनि का अधिष्ठाता हो रहा है। जिसमें यह समस्त जगत प्रलयकाल में विलीन हो जाता है और सृष्टि काल में विविध रूपों में प्रकट भी हो जाता है। उस सर्वनियन्ता वरदायक, स्तुति करने योग्य परम देव परमेश्वर को तत्त्व से जानकर मनुष्य निरन्तर बनी रहनेवाली इस मुक्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। ॥११॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्चविश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥१२॥

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को, उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है। तथा जो सबका अधिपति, महर्षि और महा ज्ञानी अर्थात सर्वज्ञ है। जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे ॥१२॥

यो देवानामधिपो यस्मिन्ल्लोका अधिश्रिताः ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

जो समस्त देवो का अधिपति है। जिसमें समस्त लोक सब प्रकार से आश्रित हैं। जो इस दो पैरवाले और चार पैरवाले समस्त जीव समुदाय का शासन करता है, उस आनन्दस्वरूप परमदेव परमेश्वर की हविष्य अर्थात् श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भेंट समर्पण करके पूजा करें ॥१३॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥१४॥

जो सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म, हृदय-गुफारूप गुह्यस्थान के भीतर स्थित। समस्त विश्व की रचना करनेवाला, अनेक रूप धारण करनेवाला, तथा समस्त जगत को सब ओर से घेरे रखनेवाला है। उस एक अद्वितीय कल्याण स्वरूप महेश्वर को जानकर मनुष्य सदा रहनेवाली, असीम, अविनाशी शान्ति को प्राप्त होता है। ॥१४॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति
॥१५॥

वही समय पर समस्त ब्रह्माण्डो की रक्षा करनेवाला समस्त जगत का अधिपति और समस्त प्राणियों मे छिपा हुआ है। जिसमे वेदज्ञ महषिगण और देवता भी ध्यान द्वारा संलग्न हैं। उस परमदेव परमेश्वर को इस प्रकार जानकर मृत्यु के बन्धनों को काट डालता है। ॥१५॥

घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१६॥

कल्याणस्वरूप एक अद्वितीय परमदेव को, मक्खन के ऊपर रहने वाले सारभाग की भाँति, अत्यन्त सूक्ष्म, और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ जानकर तथा समस्त जगत को सब ओर से घेरकर स्थित हुआ जानकर मनुष्य समस्त बंधनों से छूट जाता है। ॥१६॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १७॥

यह जगत-कर्ता महात्मा परमदेव परमेश्वर, सर्वदा सब मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है। तथा हृदय से, बुद्धि से और मन से ध्यान में लाया हुआ प्रत्यक्ष होता है। जो साधक इस रहस्य को जान लेते हैं। वह अमृत स्वरुप हो जाते हैं। ॥१७॥

यदाऽतमस्तान्न दिवा न रात्रिः न सन्नचासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥ १८॥

जब अज्ञानमय अन्धकारका तर्वथा अभाव हो जाता है, उस समय अनुभव में आने वाला तत्त्व न दिन है, न रात है, न सत् है और न असत् है। एकमात्र, विशुद्ध, कल्यानमय शिव ही है। वह सर्वथा

अविनाशी है। वह सूर्याभिमानी देवता का भी उपास्य है तथा उसी से यह पुरातन ज्ञान फैला है ॥१८॥

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये न परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः ॥१९॥

इस परमात्मा को कोई भी न तो ऊपर से, न इधर-उधर से न बीच में से ही भलीभाँति पकड़ सकता है। जिसका महान् यश नाम है उसकी कोई उपमा नहीं है ॥१९॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२०॥

इनका स्वरुप नेत्र आदि से ग्रहण नहीं किया जा सकता, उन्हें कोई भी मनुष्य लौकिक नेत्रों द्वारा देख नहीं सकता। जो इस हृदय स्थित परमात्मा को शुद्ध-बुद्धि मनसे इस प्रकार जान लेते हैं वह अमर हो जाते हैं। ॥२०॥

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते ।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ २१॥

हे रूद्र! तुम अजन्मा हो, इसलिए कोई मुझ जैसा संसार भय से कातर पुरुष तुम्हारी शरण लेता है और कहता है की तुम्हारा जो दक्षिण मुख है, उससे मेरा सर्वदा रक्षा करें। ॥२१॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा न अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदामित् त्वा हवामहे
॥२२॥

हे सबका संहार करनेवाले रुद्रदेव ! हमलोग नाना प्रकारकी भेंट समर्पण करते हुए सदा ही आपका आह्वाहन करते हैं । आप ही हमारी रक्षा करनेम सर्वथा समर्थ हैं, अतः हम आपसे प्रार्थना करते है कि आप हमपर कमी कुपित न हों तथा कुपित होकर हमारे पुत्र और पौत्रों को, हमारी आयुको जीवन को तथा हमारे गौ, घोड़े आदि पशुओं को कभी किसी प्रकारको क्षति न पहुँचायें । तथा हमारे जो वीर-साहसी पुरुप है, उनका भी नाश न करें अर्थात् सब प्रकारसे हमारी और , हमारे धन-जनकी रक्षा करते रहें। ॥२२॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

पांचवां अध्याय

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥ १॥

जिस ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ छिपे हुए असीम और परम अक्षर परमात्मा में विद्या और अविद्या दोनों स्थित हैं वही ब्रह्म है। यहाँ विनाशशील जडवर्ग को अविद्या नामसे कहा गया है और अविनाशी जीवसमुदाय को विद्या नाम से कहा गया है। तथा जो उपर्युक्त विद्या और अविद्यापर शासन करता है, वह इन दोनों से भिन्न सर्वथा विलक्षण है। ॥१॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः ।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥२॥

जो एक अकेला ही प्रत्येक योनि पर (इस जगत में देव, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, पेड़, गुल्म इत्यादि आदि जितनी भी योनियाँ

हैं), समस्त रूपों पर और समस्त कारणों पर आधिपत्य रखता है। जो पहले उत्पन्न हुए कपिल ऋषि को, हिरण्यगर्भ को, सभी प्रकार के ज्ञानों से पुष्ट करता है। तथा उस कपिल (ब्रह्मा) को सबसे पहले उत्पन्न होते देखा था ही सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सबके स्वामी परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। ॥२॥

एकैक जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥३॥

यह परमदेव परमेश्वर इस जगत-क्षेत्र में सृष्टि के समय एक-एक जाल को बुद्धि आकाशादि तत्त्वों को बहुत प्रकार से विभक्त करके उनका प्रलयकाल में संहार कर देता है। वह महामना परमेश्वर पुनः सृष्टिकाल में पहले की भाँति ही समस्त लोकों की और उनके अधिपतियों की रचना करके स्वयं उन सबके अधिष्ठाता बनकर उन सबपर शासन करते हैं। ॥३॥

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् ।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥४॥

जिस प्रकार यह सूर्य समस्त दिशाओंको ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर, सब ओर से प्रकाशित करता हुआ देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार वह ससर्वाधिक ऐश्वर्य से सम्पन्न, सबके द्वारा भजन करने योग्य परमदेव परमेश्वर अकेले ही समस्त कारणरूप अपनी भिन्न-भिन्न शक्तियों के अधिष्ठाता होकर उन सबका संचालन करता है। ॥४॥

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः ।
सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः ॥५॥

जो सबका परम कारण है और समस्त तत्त्वों की शक्तिरूप स्वभाव को अपने संकल्प रूप तप से पकाता है। तथा जो समस्त पकाये जाने वाले पदार्थो को नाना रूपों में परिवर्तित करता है और जो अकेला ही समस्त गुणों का जीवों के साथ यथायोग्य संयोग कराता है तथा इस समस्त विश्व का शासन करता है, वह ही पूर्व मन्त्र मे बताया हुए सर्वशक्तिमान परब्रह्म परमेश्वर है। ॥५॥

तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद् विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ ६॥

वह वेदों के रहस्यभूत उपनिषदों में छिपा हुआ है। वेदों के प्राकट्य स्थान उस परमात्मा को ब्रह्मा जानता है। -जो पुरातन देवता और ऋषिलोग उसको जानते थे। वह अवश्य ही उसमें तन्मय होकर अमृतरूप हो गये। अर्थात उनके स्वरूपका वर्णन उपनिषदोंमे गुप्तरूपसे किया गया है। वेद निकले भी उन्हीसे हैं, उन्हीं के निःश्वासरूप हैं-'यस्य नि.श्वसित वेदाः। जिन पूर्ववर्ती देवताओं और ऋषियोंने उनको जाना था, वे सब-के-सब उन्हींमें तन्मय होकर आनन्दवरूप हो गये । अतः मनुष्यको चाहिये कि उन सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सबके अधीश्वर परमात्माको उक्त प्रकारसे मानकर उन्हें जानने और पानेके लिये तत्पर हो जाय । ॥६॥

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ताकृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः ॥७॥

जो गुणों से बँधा हुआ है वह फल के उद्देश्यसे कर्म करनेवाला जीवात्मा ही उस अपने किये हुए कर्म के फल का उपभोग करनेवाला, विभिन्न रूपोंमें प्रकट होनेवाला, तीन गुणों से युक्त और कर्मानुसार तीन मार्गों[16] से गमन करनेवाला है।वह प्राणों का अधिपति जीवात्मा, अपने कर्मों से प्रेरित होकर अनेकों योनियों में विचरता है ॥७॥

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥८॥

जो अंगूठे के आकार के परिमाणवाला, सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप तथा संकल्प और अहङ्कारसे युक्त है, बुद्धि के गुणों के कारण और अपने गुणों के कारण ही आरे की नोक के जैसे सूक्ष्म आकारवाला है, ऐसा अपर अर्थात् परमात्मासे भिन्न जीवात्मा भी नि:संदेह ज्ञानियों द्वारा देखा गया है ॥८॥

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ ९॥

[16] जीवात्मा सत्त्व, रज और तम-इन तीनों गुणोंसे बँधा हुआ है। मृत्युके उपरान्त उसकी कर्मानुसार तीन गतियाँ होती हैं ।

बाल की नोक के सौवें भाग के पुन: सौ भागों में कल्पना किये जाने पर जो एक भाग होता है, वही उसी के बराबर जीवात्मा का स्वरूप समझना चाहिये और वह असीम भाव वाला होने में समर्थ है ।अर्थात् बाल की नोक के दस हजार भाग करने पर उसमें से एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है, उसके समान जीवात्मा का सरूप समझना चाहिये। ॥ ९॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेने तेने स युज्यते ॥१०॥

यह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है और न ही यह नपुंसक ही है। वह जिस-जिस शरीर को ग्रहण करता है, उसमें संबद्ध हो जाता है। ॥ १०॥

सङ्कल्पन स्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्यात्मविवृद्धिजन्म ।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥११॥

संकल्प, स्पर्श, दृष्टि और मोह से तथा भोजन, जलपान और वर्षा के द्वारा प्राणियों के सजीव शरीर की वृद्धि और जन्म होते हैं। यह जीवात्मा भिन्न-भिन्न लोकों मे कर्मानुसार मिलनेवाले भिन्न-भिन्न शरीरों को क्रम से बार बार प्राप्त होता रहता है। ॥११॥

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥१२॥

जीवात्मा अपने कर्मों के संस्कार रूप गुणों से तथा शरीर के गुणों से युक्त होने के कारण ममता आदि अपने गुणों के वशीभूत होकर स्थूल और सूक्ष्म बहुत-से रूपों (आकृतियों, शरीरों) को स्वीकार करता है। उनके संयोग का कारण दूसरा भी देखा गया है अर्थात् शरीरके धर्मों में ममता आदि उत्पन्न हो जाने के कारण नाना प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म रूपों को स्वीकार करता है - अपने कर्मानुसार भिन्न भिन्न योनियों में जन्म लेता है। परन्तु इस प्रकार जन्म लेने में यह स्वतंत्र नहीं है, इसके संकल्प और कर्मों के अनुसार उन-उन योनियों से इसका सम्बन्ध जोड़नेवाला कोई दूसरा ही है। वे हैं पूर्वोक्त परमेश्वर, जिन्हें तत्त्वज्ञानी महापुरुषोंने देखा है। ॥१२॥

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३॥

कलिल (दुर्गम संसार) के भीतर व्याप्त आदि-अन्तसे रहित, समस्त जगत की रचना करने वाले, अनेकरूप धारी तथा समस्त जगत को सब ओर से घेरे हुए एक अद्वितीय परमदेव परमेश्वरको ज्ञात्वा-जानकर मनुष्य समस्त बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। ॥ १३॥

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥१४॥

श्रद्धा और भक्ति के भाव से प्राप्त होने योग्य, आश्रय रहित कहे जानेवाले तथा जगत की उत्पत्ति और संहार करने वाले कल्याणस्वरूप तथा सोलह कलाओं की रचना करनेवाले परमदेव परमेश्वर को जो साधक जान लेते हैं, वह शरीर को सदा के लिये त्याग देते हैं। अर्थात जन्म-मृत्यु के चक्र से सदा के लिए छूट जाते हैं। ॥१४॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः॥

॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

छठा अध्याय

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥१॥

कितने ही बुद्धिमान् लोगः स्वभाव को जगत का कारण बताते हैं। तथा उसी प्रकार अन्ये कुछ दूसरे लोग, काल को जगत का कारण बतलाते हैं। वास्तव में यह लोग मोहग्रस्त हैं अतः वास्तविक कारण को नहीं जानते। वास्तव में तो यह परमदेव परमेश्वर की समस्त जगत में फैली हुई महिमा है, जिसके द्वारा यह ब्रह्मचक्र घुमाया जाता है। ॥१॥

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः ।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथिव्यप्तेजोनिलखानि चिन्त्यम् ॥२॥

जिस परमेश्वर से यह सम्पूर्ण जगत् सदा व्याप्त है। जो ज्ञानस्वरुप परमेश्वर निश्चय ही काल का भी महाकाल सर्वगुण सम्पन्न और सबको जाननेवाला है। उससे ही शासित हुआ यह जगतरूप कर्म विभिन्न प्रकार से यथायोग्य चल रहा है और यह पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश भी उसी के द्वारा शासित होते हैं; [इति इस प्रकार, चिन्त्यम् चिन्तन करना चाहिये ॥२॥

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तावेन समेत्य योगम् ।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥३॥

परमात्मा ने ही उस जड तत्वों की रचना रूप कर्म को करके, उसका निरीक्षण कर फिर चेतन तत्त्व का जड़ तत्व से संयोग कराके अथवा एक-अविद्या से दो-पुण्य और पापरूप कर्मों से, तीन गुणों से और आठ प्रकृतियों के साथ तथा काल के साथ और आत्म सम्बन्धी सूक्ष्म गुणों के साथ भी, इस जीव का सम्बन्ध कराके इस जगत्की रचना की है। अर्थात इस प्रकार समझना चाहिये कि उस परमपिता परमेश्वर ने ही एक अविद्या, दो पुण्य और पापरूप सचित कर्म-संस्कार, सत्व, रज और तम इन तीन गुणों और एक काल तथा मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश- इन प्रकृतिभेद, इन सबसे तथा अहंकार, ममता, आसक्ति आदि आत्म सम्बन्धी सूक्ष्म गुणोंसे जीवात्माका सम्बन्ध कराके इस जगत्की रचना की। ॥३॥

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥४॥

जो साधक सत्त्वादि गुणों से व्याप्त कर्मों को आरम्भ करके, उनको तथा समस्त भावों को परमात्मा में लगा देता है -उसी को समर्पण कर देता है। उसके इस समर्पण से उन कर्मो का अभाव हो जाने पर उस साधक के पूर्वसंचित कर्म-समुदाय का भी सर्वथा नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मों का नाश हो जाने पर वह साधक परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि वह जीवात्मा वास्तव में, अन्य समस्त जड-समुदाय से भिन्न चेतन है ॥४॥

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः ।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥५॥

वह आदि कारण परमात्मा, तीनों कालों से सर्वथा अतीत एवं कलारहित होने पर भी प्रकृति के साथ जीव का संयोग कराने में कारणों का भी कारण देखा गया है। अपने अन्तःकरण में स्थित उस सर्वरूप और जगत रूप में प्रकट, स्तुति करने योग्य, पुराणपुरुष परम देव (परमेश्वर) की उपासना करके उसे प्राप्त करना चाहिये।॥५॥

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥६॥

जिससे यह संसार निरन्तर चलता रहता है। वह परमात्मा इस संसार वृक्ष काल और आकृति आदि से सर्वथा अतीत एवं भिन्न है, उस धर्म की वृद्धि करने वाले पाप का नाश करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्य के अधिपति तथा समस्त जगत के आधारभूत परमात्मा को अपने हृदय

में स्थित जानकर, साधक अमृतस्वरूप परब्रह्म को प्रात हो जाता है ॥ ६॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥

उस ईश्वरों के भी परम महेश्वर सम्पूर्ण देवताओं के भी परम देवता, पतियों के भी परम पति तथा समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी एवं स्तुति करने योग्य उस प्रकाश स्वरूप परमात्मा को हम लोग सबसे परे जानते हैं। अर्थात उनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ और कोई नहीं है । वे ही इस जगत्के सर्वश्रेष्ठ कारण हैं और वे सर्वरूप होकर भी सबसे सर्वथा पृथक हैं। ॥७॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥८॥

उसके शरीर रूप कार्य और करण अन्तःकरण तथा इन्द्रिय रूप करण नहीं हैं। उससे बड़ा और उसके समान भी नहीं दिखाई देता तथा इस परमेश्वर की ज्ञान, बल और क्रियारूप स्वाभाविक दिव्य शक्ति अनेक प्रकार की सुनी जाती है। ॥८॥

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥९॥

जगत में कोई भी उस परमात्मा का स्वामी नही है। उसका शासक भी नही है और उसका चिह्न विशेष भी एक नहीं है। वह सबका परम कारण तथा समस्त कारणों के अधिष्ठाताओं का भी अधिपति है। कोई भी न -तो इसका जनक है और स्वामी ही है अर्थात इन परब्रह्म परमात्माका न तो कोई जनक- इन्हें उत्पन्न करनेवाला पिता है और न कोई इनका अधिपति ही है। यह अजन्मा, सनातन, सर्वथा स्वतंत्र और सर्वशक्तिमान है। ॥९॥

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः ।
देव एकः स्वमावृणोति स नो दधातु ब्रह्माप्ययम् ॥१०॥

तन्तुओं द्वारा, मकड़ी की भाँति जिस एक देव परमात्मा ने अपनी स्वरूपभूत मुख्य शक्ति से उत्पन्न कार्यों द्वारा स्वाभाव से ही अपने को आच्छादित कर रक्खा है। वह परमेश्वर हमलोगों को अपने परब्रह्मरूप में आश्रय दे। ॥१०॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥११॥

वह देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है। वहीं सबके कर्मो का अधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतोंका निवास स्थान, सबका साक्षी, चेतन स्वरुप, केवलासर्वथा विशुद्धा और निर्गुण अर्थात प्रकृति के गुणों से अतीत है। ॥११॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२॥

जो अकेला बहुत से अक्रिय जीवों का शासक है। और एक प्रकृति रूप बीज को अनेक रूपों में परिणत, कर देता है। उस हृदय स्थित परमेश्वर को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्ही को सदा रहने वाला परमानन्द प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं। ॥१२॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥

जो एक नित्य चेतन परमात्मा बहुत से नित्य चेतन आत्माओं के कर्म फल भोगों का विधान करता है। उस ज्ञानयोग और कर्मयोग से प्राप्त करने योग्य, सब के कारणरूप परमदेव परमात्मा को जानकर मनुष्य समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता हैअर्थात वह कभी किसी भी कारण से जन्म-मरण के बन्धनमे नहीं पड़ता। ॥१३॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१४॥

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है, न चन्द्रमा और तारागण का समुदाय ही प्रकाश फैला सकता है। और न यह बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित हो सकती हैं। फिर यह लौकिक अग्नि तो कैसे प्रकाशित हो सकता है, क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर ही (उसी के प्रकाश

से) बतलाये हुए सूर्य आदि सब उसके पीछे प्रकाशित होते हैं। उसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है। ॥१४॥

एको हंसः भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१५॥

इस ब्रह्माण्ड के बीच में जो एक प्रकाशम्वरूप परमात्मा परिपूर्ण है, वही जल में स्थित अग्नि है[17]। उसे जानकर ही मनुष्य मृत्युरूप संसार-समुद्रसे सर्वथा पार हो जाता है। दिव्य परमधाम की प्राप्ति के लिये कोई अन्य दूसरा मार्ग नहीं है। ॥१५॥

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ १६॥

[17] इस ब्रह्माण्डमे जो एक प्रकाशस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण हैं, वह स्वयं ही जल में प्रविष्ट अग्नि हैं। शीतल स्वभाव युक्त जल में उष्ण भाव अग्नि का होना समझ में नहीं आता क्योंकि दोनोंका स्वभाव परस्पर विरुद्ध है। परन्तु उसके रहस्य को जानने वाले वैज्ञानिकों को वह प्रत्यक्ष दिखाई देता है। शास्त्रों में भी अनेकों जगह यह बात कही गयी है कि समुद्र में बड़वानल अग्नि है। अपने कार्य में कारण व्याप्त रहता है-इस दृष्टि से भी जलतत्त्व का कारण होने से तेज तत्व का जल में व्याप्त होना उचित ही है। किंतु इस रहस्यको न जानने वाला जल में स्थित अग्नि को नहीं देख पाता।

वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वस्रष्टा, सर्वज्ञ स्वयं ही अपने प्राकट्य का हेतु काल का भी महाकाल, सम्पूर्ण दिव्यगुणों से सम्पन्न और सबको जाननेवाला है। जो प्रकृति और जीवात्मा का स्वामी, समस्त गुणों का शासक तथा जन्म-मृत्युरूप संसार में बाँधने, स्थिर रखने और उससे मुक्त करनेवाला है। ॥१६॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थोज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥ १७॥

वही तन्मय अमृतस्वरूप ईश्वरों-लोकपालों में भी आत्मरूप से स्थित सर्वज्ञ, सर्वत्र परिपूर्ण और इस ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। जो इस सम्पूर्ण जगत का सदा ही शासन करता है क्योंकि इस जगत पर शासन करने के लिये, दूसरा कोई भी हेतु नही है। ॥१७॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवं आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१८॥

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदोंका ज्ञान प्रदान करता है। उस परमात्म ज्ञानविषयक बुद्धि को प्रकट करनेवाले, प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं मोक्ष की इच्छावाला साधक शरण रूप मे ग्रहण करता हूँ। ॥ १८ ॥

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्दनमिवानलम् ॥१९॥

कलाओं से रहित, क्रियारहित सर्वथा शान्त, निर्दोष, निर्मल, अमृत के परम सेतुरूप तथा जले हुए ईंधन से युक्त अग्निकी भाँति, निर्मल ज्योतिः स्वरुप उन परमात्माका मैं चिन्तन करता हूँ। ॥१९॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥२०॥

जब मनुष्य गण आकाश को चमड़े की भाँति लपेट सकेंगे. तब उन परमदेव परमात्मा को बिना जाने भी दुःख-समुदाय का अन्त हो सकेगा। अर्थ यह है कि जिस प्रकार आकाश को चमड़े की भाँति लपेटना मनुष्य के लिये सर्वथा असम्भव है, उसी प्रकार परमात्मा को बिना ना जाने कोई भी जीव इस दुःख समुद्रसे पार नहीं हो सकता। ॥२०॥

तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥ २१॥

यह प्रसिद्ध है कि श्वेताश्वतर नामक ऋषि तप के प्रभाव से और परमदेव परमेश्वर की कृपा से ब्रह्म को विद्वान जान सके तथा उन्होंने ऋषि-समुदाय से सेवित परम पवित्र इस ब्रह्मतत्व का आश्रम के अभिमान से अतीत अधिकारियों को उत्तमरूप से उपदेश किया था। ॥ २१॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥ २२॥

यह परम रहस्यमय ज्ञान पूर्वकल्प में वेद के अन्तिम भाग-उपनिष में भलीभाँति वर्णित हुआ। जिनका अंत:करण सर्वथा शान्त न हो गया हो, ऐसे मनुष्य को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। तथा जो अपना पुत्र न हो अथवा जो शिष्य न हो उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। ॥२२॥

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२३॥

जिसकी परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वर में है उसी प्रकार गुरु में भी है। उस महात्मा-मनस्वी पुरुष के हृदय में ही यह बताये हुए रहस्यमय प्रकाशित होते हैं। उसी महात्मा के हृदय में प्रकाशित होते हैं। ॥२३॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥

॥ षष्ठ अध्याय समाप्त ॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरोपनिषद् समाप्त ॥

॥ कृष्ण यजुर्वेद वर्णित श्वेताश्वतरोपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥